प्रवचन–8 वचनामृत–412 से 413

(वचनामृत) 412 (बोल)। (इस बोल में) वैराग्य की बात है। **मरण तो आना ही है...** देह का छूटने का समय निश्चित है। इसके समय में परिवर्तन हो, ऐसा नहीं। चाहे कितनी भी दवाई करा ले या डॉक्टर (बुलाये)। मृत्यु का समय क्रमबद्ध में जिस समय,

जिस क्षेत्र में, जिस काल में, जिस निमित्त से, जिस संयोग में देह छूटेगी सो छूटेगी, छूटेगी सो छूटेगी ही। उसमें एक समय (मात्र) का भी फेरफार करने में कोई समर्थ (नहीं है)। इन्द्र, जिनेन्द्र (भी) समर्थ नहीं हैं। स्वामी 'कार्तिकेय' में आता है। एक समय (की) द्रव्य की जो पर्याय होती है, उसे फेरफार करने में इन्द्र-जिनेन्द्र भी समर्थ नहीं है। आ...हा...हा...! तो मृत्यु का समय बदलने में तीन काल में किसी की ताकत नहीं है। आहा...!

बाहर की एक वस्तु छोड़ने में तुझे दुःख होता है,... कहते हैं—बाहर की एक चीज़ छोड़ने से तुझे दुःख होता है (कि) अरेरे...! स्त्री छोड़ी, यह खाने का छोड़ा, मकान छोडा, घर छोड़ा, परदेश में गये... (वैसे) एक चीज़ छोड़ते समय तुझे दुःख लगता है। **तो बाहर के समस्त द्रव्य—क्षेत्र—काल—भाव एकसाथ छूटने पर...** आहा...हा...! बाहर के संयोग—द्रव्य-काल और भाव, एक समय में सब छूट जायेगा। जिस समय छूटने का (है), उस समय छूट जायेगा। इसमें फेरफार करने में कोई समर्थ नहीं है। आहा...!

तुझे कितना दुःख होगा? एक चीज़ छोड़ने में दुःख होता है (परन्तु) सब छूट जायेगा! इस देह का श्वास भी नहीं रहेगा। वह उसके हाथ में नहीं रहेगा। श्वास में भी चैतन्य के प्रदेश हैं। क्या कहा? जो यह श्वास चलती है न? (उसमें) केवल जड़ के परमाणु नहीं हैं, उसमें चैतन्य के प्रदेश हैं। श्वास अपने कारण से चलती है। आहा...हा...! यह श्वास चलती है न श्वास? यह जड़ के परमाणु की पर्याय (है), परन्तु उसमें आत्मा के प्रदेश हैं। परन्तु जब यह श्वास (भी) जब बन्द होगी, तब आत्मा के प्रदेश उसे चलाने का काम नहीं करेंगे। आहा...हा...हा...! जब श्वास चलाने का काम नहीं करेंगे, अमुक वह और क्या करेंगे तब? आहा...!

सारा दिन कर्ता... कर्ता... कर्ता... (होकर फिरता है)। अमुक मैंने किया... अमुक मैंने किया... अमुक मैंने किया... ये पैसे कमाये और ऐसा व्यापार किया और इतने नौकर इकट्ठे किये, नौकर अच्छे मिले! क्या है यह? यह भ्रमणा तुझे हुई है, कहाँ तुझे जाना है? आहा...हा...!

परमात्मा तो ऐसा कहते हैं—जो माँस और दारू आदि का सेवन करे, शराब पीये, वे तो मरकर नरक में जायेंगे। इसमें कोई फेरफार हो, ऐसा नहीं है। परन्तु जिसको वह नहीं

हो, किन्तु क्रोध, मान, माया, लोभ (आदि) कषाय हैं और धर्म नहीं है, आत्मज्ञान नहीं है और राग की मन्दता भी नहीं है—ऐसे जीव मरकर तिर्यंच अर्थात् पशु होते हैं। आ...हा...हा...! वह भी मरने के बाद, यहाँ बड़ा करोड़पति हो, देह छूटकर घोड़े की कोख में या गाय की कोख में जाकर अवतार लेगा! आ...हा...हा...! ऐसे मरण प्रभु! अनन्त बार किये हैं। परन्तु तूने तेरी चिन्ता की नहीं कि मेरा क्या होगा? बाहर की बातों में उलझ गया है। आहा...हा...!

(यहाँ) कहते हैं, **तुझे कितना दुःख होगा? मरण की वेदना भी कितनी होगी?** आ...हा...हा...! श्वास चले नहीं, अन्दर से रोम-रोम चीखता हो, ऐसी तीव्रता—दुःख की वेदना होगी। आहा...हा...! पहले से यदि चेता नहीं... क्रियाकाण्ड नहीं, अपितु आत्मा को राग से भिन्न जानकर सत् चिदानन्द प्रभु मेरा स्वरूप (है, ऐसा जानना पड़ेगा)। अनुभूति (स्वरूप) भगवान आत्मा! सुबह आया था। अनुभूति(स्वरूप) भगवान आत्मा (एक) समय की (ज्ञान की) पर्याय में जानने में आता है, हर एक को जानने में आ रहा है। फिर भी जानने के प्रति उसका लक्ष्य नहीं है। आहा...हा...!

परमात्मा ऐसा कहते हैं कि उस-उस समय में आत्मा (ही जानने में आता है)। उसकी पर्याय का ऐसा धर्म है (कि) उसमें भगवान आत्मा ही जानने में आ रहा है। परन्तु जीव उसकी ओर देखता नहीं है। जानने में आ ही रहा है, उसे देखता नहीं है और नहीं जानने में आता है, उसे देखकर मृत्यु करता है। आहा...! ये सब अनन्त बार तिर्यंच और नरक में अवतार किये और करेगा। वहाँ उसके पैसे, अरब या करोड़ (रुपये) उसे बचा नहीं लेंगे। दान किया होगा, (उसमें भी) राग की मन्दता की होगी तो थोड़ा शुभ(भाव) होगा। परन्तु (वह सब) 'एरन की चोरी और सूई का दान' (जैसा है)। (अर्थात्) सारे दिन के पाप और उसमें एक-दो घड़ी कुछ शुभभाव (किये होंगे तो उसकी) कोई गिनती नहीं है। वे शुभभाव निरर्थक जायेंगे।

प्रभु! देह छूटने के पश्चात् कहाँ जायेगा? (यहाँ) कहते हैं, मरण की वेदना भी अकथ्य (होगी)। **'कोई मुझे बचाओ'** (ऐसा तुझे होता होगा)।

राजकोट में एक बार वहाँ नानालालभाई करोड़पति। उनके काका के पुत्र को एकदम अन्दर में कुछ हो गया। सारा कुटुम्ब इकट्ठा हुआ। सब करोड़पति लोग! और

अन्दर पीड़ा (हो)। छोटी उम्र (थी), नयी-नयी शादी हुई थी... आँख में से आँसुओं की धारा बह रही थी। दूसरों ने कहा, 'बुलाओ महाराज को!' आहा...हा...! ज़वान आदमी था! (लेकिन) पीड़ा... पीड़ा... पीड़ा... सब करोड़पति कुटुम्बी इकट्ठे हुए। पूरा घर भर गया और आँखों से आँसुओं की धारा चली जाय...! (बोलता था) 'मेरे से सहा नहीं जाता, मुझे अन्दर में इतनी वेदना है, क्या कहूँ?' ऐसा कहते-कहते एकदम असाध्य हो गया। 'बेचरभाई' थे उनके दो-तीन भाई थे। (उनको ऐसा लगा कि इसके हाथ से) महाराज को कुछ दे तो कुछ पुण्य तो बाँधे! (इसलिए) उसके हाथ में मोसंबी या कुछ (ऐसा) दिया। लेकिन हाथ में कँपकपी और अन्दर में मरण की वेदना!! जवान आदमी... यह वेदना बापू! सही न जाये। बाहर से तुझे कोई मदद नहीं कर सकेगा। आहा...हा...!

ऐसे **मरण की वेदना भी कितनी होगी? 'कोई मुझे बचाओ'....** आहा...हा...! ऐसे तू चीखता रहेगा। **ऐसा तेरा हृदय पुकारता होगा। परन्तु क्या कोई तुझे बचा सकेगा?** अरे...! कर्तव्य तो प्रभु...! राग से भिन्न करने का कर्तव्य है, वह यदि नहीं किया आहा...हा...हा...! कहाँ जाना? सारा दिन जलन...! और सारा दिन कर्ताबुद्धि! यह किया और वह किया, यह किया...! बेटे के लिये ऐसा किया और बेटी के लिये ऐसा किया! बापू! मृत्यु के समय दबाव में आ जायेगा!! तुझे दुःख को सहन करते हुए देखनेवाले रोयेंगे! ऐसी पीड़ा जगत में अनन्त बार हुई है। वही यहाँ कहते हैं (कि) तुझे कोई बचा सकेगा नहीं।

(राजकोट में तो) यह नजरों से देखा था। सब बेचारे यूँ देखते थे। कुटुम्बी करोड़पति सब इकट्ठे हुए थे। और इसकी तो मरने की तैयारी...! हाय...हाय...! आँसू की धारा बहे...! कौन बचाये प्रभु? शरीर की स्थिति का जो छूटने का और वेदना का समय (है), उसमें कोई फेरफार कर सकता नहीं। कोई बचा सकता (नहीं)।

तू भले ही धन के ढेर लगा दे,... करोड़ों रुपये की लक्ष्मी इसके लिये खर्च कर दें (तो भी) वह कोई दुःख से नहीं छूट सकेगा। आहा...हा...! **वैद्य–डॉक्टर भले सर्व प्रयत्न छूटें,...** यह डॉक्टर लो! चन्दुभाई डॉक्टर है।

मुमुक्षु : (डॉक्टर लोग) प्रतिदिन कईयों को बचाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वही बात करते हैं। किसी को बचा सकते नहीं। आ...हा...हा...!

यह बात अन्दर में प्रवेश होनी चाहिए, हों...! ऊपर-ऊपर से बात करे इसमें कुछ नतीजा नहीं आता! आहा...हा...!

यहाँ तो बहिन ने वैराग्य की बात करते हुए यह बात ली है। अरे...! **तू भले ही धन के ढेर लगा दे,...** ये करोड़ (रुपये) दे दूँ, कोई डॉक्टर बचा ले तो! एक घड़ी का इतना पैसा दे दूँ–पाँच लाख-दस लाख (दे दूँ) (यदि) कोई बचा ले (तो)! उस समय बचाने के लिए कोई समर्थ नहीं है। तेरे अरबों (रुपये) के ढेर पड़े होंगे, (परन्तु तेरी यह) धूल पड़ी रहेगी। मरकर चला जायेगा पशु में!! माँस और दारू का सेवन यदि नहीं किया होगा तो भी मरण करके पशु में जायेगा।

सिद्धान्त में ऐसा लेख है कि बहुत-से जीव तिर्यंच–पशु में अवतार लेंगे! क्योंकि धर्म नहीं है (अर्थात् कि) सम्यग्दर्शन नहीं है, और सारा दिन पाप किये हैं, पुण्य का भी ठिकाना नहीं है, एक-दो घड़ी पुण्य बाँधा हो और 23 घण्टे पाप (किये हो)! आ...हा...हा...! वे (सब) मरकर ढोर में–पशु में–तिर्यंच में अवतार लेंगे! मनुष्य की बड़ी संख्या मरकर तिर्यंच में अवतार लेगी–ऐसा सिद्धान्त में लेख है। आहा...हा...! पशु होगा, फिर मनुष्यपना कब मिलेगा? कब उसे जिनवाणी सुनने मिलेगी? (फिर आत्महित करने का) उसे अवसर नहीं रहेगा। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं, **वैद्य–डॉक्टर भले सर्व प्रयत्न छूटें, आसपास खड़े हुए अनेक सगे–सम्बन्धियों...** यह तो सब नजरों से देखा हुआ! आ...हा...हा...! सगे-सम्बन्धियों से पूरा कमरा भरा था। वह तो रो रहा था और मरने की तैयारी! आहा...हा...! नयी–नयी शादी की थी परन्तु दुःख का पार नहीं...! धर्म किया नहीं था, धर्म सुनने के योग में दरकार (की) नहीं। दो घड़ी कदाचित् कहीं गया भी हो तो पीछे 23 घण्टे होली सुलगती हो!! आहा...हा...! उन 23 घण्टे के पाप (के आगे) तेरे दो घड़ी के पुण्य सूक्ष्म बात है, प्रभु!

वही यहाँ कहते हैं, **आसपास खड़े हुए अनेक सगे–सम्बन्धियों की ओर तू भले ही दीनता से टुकुर–टुकुर देखता रहे,...** आ...हा...हा...! 'एक रे दिवस ऐवो आवशे..' आहा...! 'एक रे दिवस ऐवो आवशे' तब तेरी ओर कोई देखेगा नहीं। आहा...!

स्त्री ऐसे देखेगी... अरेरे...! इस काया में अब कुछ नहीं रहा। ऐसे फूट-फूटकर रोयेगी...! फिर भी एक समय का इसमें फेरफार सम्भव नहीं है। आहा...हा...! 'एक रे दिवस एवो आवशे, जाणे जन्म्या ज नहोता जी, सगी रे नारी रे तारी कामनी, ए उभी टग-टग जोशे जी, आ रे कायामां हवे कांई नथी, एम ध्रुसके-धुसके रोशे जी...' देह से छूटने का (आत्मा का) ज्ञान किया नहीं और देह की, राग की एकताबुद्धि में जिन्दगी गुजारी है! भले ही (शास्त्र की) जानकारी की हो, क्रियाकाण्ड किये हो—वह कुछ वहाँ शरणभूत नहीं है। शुभभाव किये हो तो पुण्य के परमाणु बँधे होंगे। इसे वर्तमान में तो शुभभाव है नहीं। मरते (मृत्यु के समय) पूर्व में पुण्य-पाप किये हों, वे परमाणु पड़े हों, वे परमाणु क्या शरण देंगे? आ...हा...हा...! समझ में आया?

अब तो 'समयसार' पर स्वाध्याय चलेगा। इसलिए यह जरा अन्तिम बात यह बहिन के वचनामृत की ले ली। कल सुबह तो व्याख्यान नहीं है। दोपहर में 'समयसार' चलेगा। आहा...हा...!

सगे—सम्बन्धियों की ओर तू भले ही दीनता से टुकुर—टुकुर देखता रहे, तथापि क्या कोई तुझे शरणभूत हो, ऐसा है? आ...हा...हा...! वे (सब) देखेंगे कि यह अब नहीं बचेगा। हो गया...! वे खड़े-खड़े देखेंगे और रोयेंगे। और वह भी यह मरकर कहाँ गया होगा? इसलिए नहीं रोते। वह मरकर किस गति में गया? पशु में या नरक में (गया), इसके लिये नहीं रोते! उसकी अपनी वर्तमान अनुकूलता छूट गयी, उसकी तरफ से जो भी अनुकूलता मिलती थी, इसके लिये वह रोता है! आहा...हा...! किसी ने ऐसा पूछा कभी कि यह मरकर कहाँ गया होगा? ऐसा विचार किया है, मृत्यु पर? यह तिर्यंच में गया या एकेन्द्रिय में गया या वनस्पति में गया? आ...हा...हा...! (वह) मरते हुए इसने कोई विचार किया है? आ...हा...हा...! मात्र बस! दुकान सँभालता था और विषय में अनुकूल था, वह अनुकूलता चली गयी; उसे यह रोता है। वह मरकर नरक में गया हो तो भी मुझे कहाँ (नरक में) जाना है!! आ...हा...हा...! कहो, जेठालालभाई! वह मरकर नरक में गया होगा या तिर्यंच में गया होगा—कभी ऐसा विचार किया है? पत्नी मरी, लड़का मरा, लड़की मरी, बहुएँ मरी... वे मरकर किस ज़गह गयी होगी? इसका विचार किया है? हमारी अनुकूलता गयी,

उसे रोता है!! वह भले ही नरक में गया हो, तिर्यंच में–पशु में गया हो...! आहा...हा...! ऐसी संसार की स्थिति है!!

ऐसे में यदि यह आत्मा की भावना (नहीं की), राग से भिन्नता के संस्कार (ग्रहण) नहीं किये... आहा...हा...! विकार के वेदना से प्रभु के आनन्द का वेदन भिन्न है, ऐसे संस्कार यदि (प्राप्त) नहीं किये (तो) प्रभु! (तेरी) गति बिगड़ जायेगी! वहाँ किसी का सहारा या साथ नहीं है। वहाँ जगत की सिफारिश काम नहीं आयेगी कि भाई ने बहुत ऐसा किया था, हमारा (ऐसा) किया था, हमारा (उतना) किया था, हमारी जाति में अग्रेसर था, हमारा प्रमुख था, हमारा फलाना था–वहाँ ऐसी कोई सिफारिश काम आये, ऐसा नहीं है। आ...हा...हा...! वह मरकर अकेला तड़पता... तड़पता छूटकर चला जायेगा!

देह, राग और आत्मा अत्यन्त भिन्न है–ऐसे संस्कार जिसने डाले नहीं, (आत्मा का) अनुभव तो भले ही न हो, परन्तु संस्कार भी नहीं डाले,... आहा...! बाह्य अनुकूलता की चीज़ में ठीकपना कर-करके भटक मरा है।

वही यहाँ कहते हैं, **टुकुर–टुकुर देखता रहे, तथापि क्या कोई तुझे शरणभूत हो ऐसा है? यदि तूने शाश्वत स्वयंरक्षित ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा की...** आ...हा...हा...! करना तो यह है। लाख बात की बात..! छहढाला में आता है। ज्ञानचन्दजी! छहढाला में आता है। 'लाख बात की बात, निश्चय उर आणो, छोड़ी जगत द्वंद्व-फंद निज आत्म उर ध्यावो'–इसके बिना सब थोथा ही थोथा (है)। रो-रोकर–मरकर सब जायेंगे पशु में!! आहा...हा...! आर्य मनुष्य होने से माँस और दारू का सेवन तो नहीं किया हो, इसलिए बीचवाली दशा–पशु-तिर्यंच-ढोर की होगी। अनन्त काल पश्चात् फिर उसमें से मनुष्यत्व कब मिलेगा? आहा...हा...! अरे...! इसने कभी विचार किया नहीं। पर के विचार और पर के ही कार्य में लगे रहकर स्वयं ने अपना अहित किया है। उसे यह भी पता नहीं है कि मैं अपना अहित कर रहा हूँ!! आहा...!

यदि तूने शाश्वत स्वयंरक्षित... अन्दर में शाश्वत भगवान है, (वह) स्वयंरक्षित है। उसे (रक्षित) रखे तो वह रहे, ऐसा नहीं है। (ऐसा) चैतन्य भगवान स्वयं रक्षित है। स्वयं–अपनेआप से रक्षित है। आहा...हा...! **स्वयंरक्षित ज्ञानानन्दस्वरूप...** अतीन्द्रिय ज्ञान

और अतीन्द्रिय आनन्द-स्वरूप – ऐसे **आत्मा की प्रतीति–अनुभूति करके आत्म–आराधना की होगी,...** आहा...हा...! करना तो यह है! दूसरी सब धमाल बाहर में चाहे कितनी भी हो! आहा...हा...! क्या कहा?

शाश्वत स्वयंरक्षित... भगवान (आत्मा) तो अन्दर स्वयंरक्षित है। कोई रखे तो रहे, नहीं रखे तो न रहे (ऐसा नहीं है)। वह तो नित्यानन्द प्रभु है! सत् चिदानन्द प्रभु! देह देवल में विराजमान स्वयंरक्षित है। आहा...हा...! इसकी ओर देख! उसे देख! कुछ है अन्दर!! अन्दर में निधान भरा है!! आहा...हा...! उस निधान को देखने के लिये अवकाश नहीं लेता। आहा...! बाहर की हौस और हर्ष की (आड़ में निधान देखने का अवकाश नहीं लेता)!

स्तवन है... एक स्तवन! चार सज्झायमाला हैं। चार स्वाध्याय हैं। एक-एक में 200-300 स्वाध्याय हैं। एक-एक स्वाध्याय में दस-दस, पन्द्रह-बीस श्लोक हैं। ऐसे चार (स्वाध्याय हैं)। मैं तो दुकान पर था (तब) मैंने मँगवाये थे। बीस साल की उम्र में...! सब पढ़े हैं। उसमें एक ऐसा आया था। 'होंशिडा होंश न कीजिये'–हे जीव! तेरी चैतन्य की सत्ता को छोड़कर पर की हौस में हौस मत करना प्रभु! आहा...हा...! सज्झाय है। चार सज्झाय हैं, श्वेताम्बर में है। उस समय दुकान पर सब पुस्तकें मँगवायी थी। एक-एक में 250-300 सज्झाय (हैं), ऐसी चार सज्झायमाला हैं। इसमें एक यह था। आहा...हा...! प्रभु...! तू कहाँ हौस करता है? तेरा स्वरूप अन्दर में ज्ञानानन्द भरा है, इसके प्रति तुझे हौस आती नहीं, उसके प्रति तेरा प्रयत्न आता नहीं, उसके प्रति तुझे हर्ष आता नहीं और इसके बजाय पुण्य और पाप और इसके फल में तुझे हर्ष व हौस (आती है)! प्रभु! मर गया तू! आ...हा...हा...हा...! है?

स्वयंरक्षित ज्ञानानन्दस्वरूप आत्मा की प्रतीति... ऐसी प्रतीति कैसे होवे? यह बात तो अपनी चलती है सारे दिन। देह भी मैं नहीं, वाणी मैं नहीं, मन मैं नहीं, पाप के परिणाम मैं नहीं, पुण्य के परिणाम मैं नहीं, एक समय की पर्याय पर दृष्टि नहीं, आहा...हा...! मैं (तो) त्रिकाली स्वसंवेदन स्वयंरक्षित आत्मा (हूँ)! 'इसकी प्रतीति की हो...' ऐसे स्वरूप की प्रतीति (स्वयं) पर्याय है, परन्तु प्रतीति करना किसकी? त्रिकाल ज्ञायकस्वरूप की! आहा...हा...!

अब, एक तरफ बाहर में (आकुलता की) होली सुलगती हो, पच्चीस-पचास लाख पैदा होते हो, (एक) दिन की लाखों की पैदाइश हो (उसमें) खुद उलझ गया। लड़के अच्छे निकले हो... बस! हो गया! जैसे हम तो कहाँ से कहाँ पहुँच गये! बापू! वह सब नाशवान है, भाई!

यह स्वयंरक्षित प्रभु, ज्ञानानन्दस्वभाव की प्रतीति, इसकी अनुभूति – दो (शब्द) हैं न? इसकी प्रतीति और अनुभूति **करके आत्म–आराधना की होगी,...** आहा...हा...! 'आत्म–आराधना'! पुण्य की आराधना और राग की आराधना, व्यवहार की आराधना– वह नहीं। आता है, व्यवहार बीच में आता है परन्तु वह सब हेय (हैं)–छोड़नेयोग्य हैं।

आहा...हा...! अन्तर में स्वयं आनन्द स्वभाव (है, इसकी) **अनुभूति करके आत्म–आराधना की होगी, आत्मा में से शान्ति प्रगट की होगी,...** यह कर्तव्य है। लाख बात की बात – निज आतम उर ध्याओ। आहा...हा...! छहढाला में आता है न? लाख बात की बात नहीं... अनन्त बात की बात! करोड़ बात की बात नहीं... अनन्त बात की बात! अनन्त बात की बात! अनन्त बात की (बात) 'निज आतम उर ध्याओ।' अन्दर मेरा आत्मा प्रभु ज्ञानानन्दस्वभाव है, उस पर दृष्टि करके उसका सेवन कर, तो तेरे जन्म-मरण के फेरे मिटेंगे। वरना जन्म-मरण के फेरे, चौरासी के अवतार ऐसे के ऐसे खड़े हैं, और ऐसे के ऐसे ही खड़े रहेंगे। आहा...हा...! अवकाश कहाँ है परन्तु? सुनने मिले (तो) भी वहीं का वहीं पड़ा रहे। आहा...हा...!

(यहाँ) कहते हैं कि, **आत्मा में से शान्ति प्रगट की होगी,...** आत्मा में शान्तरस पड़ा है, आत्मा में अकषायरस पड़ा है। अकषायरस कहो, शान्तरस कहो, चारित्रगुण कहो, अन्दर रमणता नाम का गुण कहो–ऐसा गुण (पड़ा है)। ऐसा शान्तरस अनादि-अनन्त पड़ा है। आहा...हा...! ऐसे आत्मा में से शान्ति प्रगट की होगी... परन्तु यह शक्तिरूप शान्ति है। आहा...! स्वभाव में शान्ति पड़ी है, उसे पर्याय में व्यक्त–प्रगट करके... आहा...!

('समयसार') 49 गाथा में तो यहाँ तक कहा है–आत्मा, पर्याय को स्पर्शता नहीं! आ...हा...हा...! क्या कहा? द्रव्यस्वभाव राग को तो स्पर्श नहीं करता, परन्तु वह पर्याय को भी स्पर्शता नहीं!! और उसकी वह पर्याय, द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। 49 गाथा...

'अव्यक्त...!' अव्यक्त के छह बोल हैं। (उसमें आता है।) व्यक्त और अव्यक्त का ज्ञान होने पर भी, व्यक्त अर्थात् पर्याय और अव्यक्त अर्थात् द्रव्य, दो का ज्ञान होने के बावजूद भी यह आत्मा व्यक्त अर्थात् पर्याय को स्पर्श नहीं करता। अरेरर...! यह बात सुननी कठिन लगे! क्या कहा?

आत्मा त्रिकाली स्वरूप है, उसे वहाँ 'अव्यक्त' कहा है और प्रगट पर्याय को 'व्यक्त' कहा है। यह प्रगट पर्याय जो है, उसका और अव्यक्त का ज्ञान होने पर भी, व्यक्त अर्थात् पर्याय को द्रव्य स्पर्श तक नहीं करता। आहा...हा...! गज़ब बात है। (ऐसा मानने के) बज़ाय, उसे यूँ छूता हूँ और शरीर को ऐसे करता हूँ, शरीर से भोग लेता हूँ... (ऐसा मानता है)। आहा...हा...! प्रभु... प्रभु... प्रभु...! गज़ब बातें हैं, बापू!

सर्वज्ञ त्रिलोकनाथ परमात्मा का सत्य (यह है कि) व्यक्त पर्याय को भी अव्यक्त– त्रिकाली द्रव्य, शुद्ध सत् चिदानन्द, शान्ति का सागर स्पर्शता नहीं है! आहा...हा...! वह पर्याय को नहीं छूता। यह क्या बात है!! झवेरचन्दभाई! 'समयसार' 49 गाथा में है। 'अव्यक्त' के छह बोल हैं। आहा...! आत्मा त्रिकाल है–वह व्यक्त नहीं। परन्तु वर्तमान पर्याय प्रगट है, उसे व्यक्त कहते हैं और त्रिकाल जो प्रगट नहीं है, उसे अव्यक्त कहते हैं। उसे पर्याय की अपेक्षा से अव्यक्त कहते हैं, अप्रगट कहते हैं। वस्तु की अपेक्षा उसे प्रगट कहते हैं। अरे...! अरे...! यह कैसे सुना जाये!

यह अन्तर (में) पकड़े बिना इसके जन्म-मरण का अन्त, चौरासी के फेरे फिरना नहीं मिटते, बापू! वह बाहर में चाहे कुछ भी मनवाये और माने कि मैंने ऐसा किया और ऐसा किया, हमने वैसा किया, दान में करोड़ों रुपये खर्च किये; इसलिए मेरे जन्म-मरण कुछ कम होंगे! (ऐसा मानना) हराम है, (ऐसा) कहते हैं। आहा...हा...!

यहाँ कहते हैं कि शान्ति का सागर प्रभु है। कैसे बैठे...? क्योंकि इसमें ऐसा चारित्र नाम का गुण अनादि (से) है। इस चारित्रगुण का स्वरूप शान्त है। चारित्रगुण का स्वरूप अकषाय है। यह अकषाय शान्तभाव त्रिकाल है। इस शान्तभाव को स्पर्श किये बिना अर्थात् प्रगट किये बिना (जन्म-मरण नहीं मिटेंगे)। (प्रगट हुआ शान्त भाव) त्रिकाली को स्पर्श नहीं करता। थोड़ा सूक्ष्म लगेगा। परमार्थ धर्म की शान्ति की जो पर्याय है, वह त्रिकाल

शान्तस्वरूप प्रभु है, उसे वह छूती नहीं। आहा...हा...! क्योंकि द्रव्य का वेदन नहीं होता। वेदन पर्याय का होता है और इसीलिए तो ऐसा कहा कि आनन्द और शान्ति का जो वेदन है, वह आत्मा (है)! हमारे लिये तो वह आत्मा (है)। रागादि तो आत्मा नहीं परन्तु द्रव्य भी आत्मा हमारे लिये नहीं!! हमारे लिये तो द्रव्य आत्मा नहीं! पण्डितजी! (ऐसा कहा) आहा...हा...! 'प्रवचनसार-172' गाथा (में) बीस वें बोल में कहा है।

राग-दया-दान, व्रत, भक्ति, पूजा ये तो आत्मा नहीं, वे तो अनात्मा हैं। आहा...हा...! परन्तु एक समय की पर्याय भी द्रव्य नहीं–वस्तु नहीं। निर्मल पर्याय–सम्यग्दर्शन (की), ज्ञान की, शान्ति की निर्मल पर्याय–उस पर्याय को द्रव्य स्पर्श नहीं करता। धर्मी को पर्याय वेदन में आती है। शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... दूसरे प्रकार से कहे तो (वह) अकषाय भाव (है)। आहा...हा...!

एक बार यह कहा था–'ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, ज्यों निर्मलता रे स्फटिक की, त्यों ही जीव स्वभाव रे... श्री जिनवीरे धर्म प्रकाशियो, श्री जिनवीरे धर्म प्रकाशियो, प्रबळ कषाय अभाव रे...' ये पुण्य-पाप के भाव कषाय हैं। उनका अभाव (होना), उसे भगवान ने धर्म कहा है। समझ में आया? यह मन्दिर बनायें, लाखों रुपया खर्च करे, करोड़ों खर्च करें, इससे उसे धर्म हो जायेगा, उसके जन्म-मरण मिट जायेंगे (–ऐसा नहीं है)। भभूतमलजी!

आहा...हा...! यहाँ अन्दर शान्तरस से (भरा) प्रभु पड़ा है न! अकषायस्वरूप कहो या शान्त कहो या चारित्र कहो–ऐसा अनादि–अनन्त चारित्र का स्वभाव अन्दर पड़ा है। उस पर नज़र करने पर, पर्याय में जो शान्ति प्रगट होती है, उस शान्ति को–मुक्ति के मार्ग को सम्यग्दर्शन कहते हैं। इस सम्यग्दर्शन के बिना जो कुछ भी करने में आता है, वह सब 'बिना एक के शून्य हैं।' कोरे कागज़ पर एक अंक लिखे बिना करोड़ शून्य (करे तो) भी इससे कोई संख्या नहीं हो जाती। आहा...हा...! कठिन बात है, प्रभु!

अन्दर शान्त... शान्त... शान्त... स्वरक्षित भगवान (विराजमान है)। उसे रखे तो रहे, ऐसा नहीं है। वह तो स्वरक्षित ही है और ज्ञानानन्दस्वरूप है। मृत्यु के समय प्रभु! यदि तुझे यह याद न आवे... आहा...हा...! मृत्यु के समय ऐसा साधकपना प्रगट नहीं किया होगा तो प्रभु (तू) मृत्यु के समय दबाव में आ जायेगा, दुःख में दब जायेगा, पीड़ित होता हुआ मरकर तिर्यंच या नरक में जाना पड़ेगा। आहा...हा...!

अरे...! इसका विचार भी कब किया है? कि, मेरा क्या होगा? मैं यहाँ से (कहाँ जाऊँगा)? देह तो छूट जायेगी परन्तु मैं कोई छूटनेवाला हूँ? छूटूँगा (लेकिन) देह से। देह छूटती है, तब लोग ऐसा कहते हैं न कि, यह जीव गया! ऐसा कहते हैं क्या कि जीव मर गया? देह छूटे तब ऐसा कहते हैं न कि, Pulse हाथ नहीं आती है, बापू! लगता है जीव गया! अब इसमें जीव नहीं लगता है। (यहाँ) से गया तो कहीं रहा है कि या नहीं? यहाँ से गया तो कहीं और रहा तो है या नहीं? कहाँ रहा है? आत्मा के भान बिना कषाय किये होंगे तो मरकर तिर्यंच में रहा होगा! आहा...हा...! जिसने आत्मा का सम्यग्दर्शन या सम्यग्दर्शन के संस्कार अन्तर में नहीं डाले होंगे और लौकिक संस्कार के घेरे में घिरा हुआ रहेगा... आहा...हा...! मृत्यु पश्चात् कहाँ से कहाँ (चला) जायेगा। आहा...हा...!

(इसीलिए यहाँ कहते हैं) **आत्मा में से शान्ति प्रगट की होगी, तो वह एक ही तुझे शरण देगी।** सिद्धान्त में तो ऐसा लेख है—चत्तारि अरिहंता शरणं। मांगलिक में आता है न? 'अरिहंता शरणं, सिद्धा शरणं, साहु शरणं, केवलीपण्णत्तो धम्मो शरणं'—ऐसे चार बोल विकल्प हैं। निश्चय से वे शरण नहीं। अरिहन्त शरण नहीं, सिद्ध शरण नहीं, साधु शरण नहीं, अरे...! केवली द्वारा प्ररूपित धर्म तो पर्याय है, वह भी शरण नहीं! अन्दर चिदानन्द भगवान (आत्मा) शरण है!! आहा...हा...! उत्तम मांगलिक, उत्तम शरण और उत्तम दाता...! आहा...हा...! वह तो प्रभु अन्दर भरा है भाई! परन्तु तुझे खबर नहीं। आहा...हा..! ऐसा तू भगवान है! तू पामर होकर फिरता है...! आहा...! वही कहते हैं (आत्मा में से) शान्ति प्रगट की होगी (तो) वह एक ही तुझे शरण देगी। **एक ही...** (शरण देगी)! 'णमो अरिहंताणं, णमो अरिहंताणं...' करेगा तो वह भी शरण नहीं देगा, (ऐसा) कहते हैं। आहा...हा...! भगवान का नाम लो, भगवान का नाम लो भाई! (ऐसा लोग कहते हैं न?) आहा...हा...! भगवान का नाम लेने का विकल्प भी राग है। आहा...हा...!

अन्तर आनन्दस्वरूप भगवान है, उसका ज्ञान करके लक्ष्य तो कर! दूसरे का लक्ष्य छोड़ दे। दूसरे से कुछ कल्याण और श्रेय नहीं है। आत्मा में ऐसे संस्कार डाले बिना वह आगे जाकर समकित पायेगा नहीं। भविष्य में मिथ्यात्वसहित चारगति में फिर से भटकने चला जायेगा। मनुष्यपना हार जायेगा।

वही (यहाँ) कहते हैं, **वह एक ही तुझे शरण देगी।** उन चार मांगलिक को भी

'अमांगलिक' कहा है! आ...हा...हा...! 'पद्मनंदी पंचविंशती' में 'एकत्व सप्तति' नाम का अधिकार है। उसमें ऐसा लिया है कि वे चारों शरण नहीं हैं। शरण अन्दर में भगवान आत्मा है। आहा...हा...! अन्दर अखण्डानन्द प्रभु शान्ति का सागर, अतीन्द्रिय तेज के प्रकाशवाला–चेतन के प्रकाश का पुँज प्रभु अन्दर है परन्तु तेरी नज़र गये बिना तुझे निधान दिखेगा नहीं। आहा...! राग और पर्याय के प्रेम में अटककर और स्व को भूलकर यह भटकता है। साधु हुआ! दिगम्बर साधु...! नग्न मुनि (हुआ)! आहा...हा...! अट्ठाईस मूलगुणों का पालन किया, पंच महाव्रत धारण किये परन्तु आत्मज्ञान बिना शून्य हुआ। आहा...हा...! इसके बिना एक समय (भी) शान्ति न मिली!

वही यहाँ कहते हैं कि यदि (आत्मा में से) शान्ति प्रगट की होगी, **तो वह एक ही तुझे शरण देगी। इसलिए अभी से वह प्रयत्न कर।** बाद में करूँगा... बाद में करूँगा... ऐसा वायदा रहने दे! 'जिसकी जिसको रुचि हो उसके वह वायदे नहीं होते।' जिसको जिसमें रुचि हो उसमें उसका वायदा नहीं होता। आहा...हा...! वैसे यदि आत्मा की रुचि होगी तो इसके लिये वायदा नहीं होता कि अभी नहीं, बाद में करूँगा। बाद में करूँगा... बाद में करूँगा... उसका बाद में ही रह जायेगा! समझ में आया? आहा...हा...!

एक दृष्टान्त आता है। बनियों का जीमन था। उसमें बारोट आये, बारोट ने कहा, 'हमें भी जिमाईये, आपके पाँच-पाँच हज़ार आदमी खाना खायेंगे, उसमें साथ-साथ हम पाँच सौ बारोट हैं, (हमें भी) खिलाईये!' बनिये ने कहा, 'आज नहीं कल! कल जरूर आज नहीं' (बारोट) दूसरे दिन (फिर से) आयें। (तब बनिये ने कहा) 'क्या लिखा है यह?' 'आज नहीं कल!' वह कल कभी होती नहीं, और बारोट कभी खाये नहीं। आहा...हा...! वैसे अभी नहीं... अभी नहीं... अभी नहीं...! (जो करता है उसकी) कल कभी आज होती नहीं और अभी नहीं... अभी नहीं... (करते-करते) यूँ ही मरकर चला जायेगा चौरासी के अवतार में!! आहा...! (जैसे) बारोट को खाने मिले नहीं, वैसे इसे सत्य कभी हो नहीं। आहा...हा...! अभी नहीं बाद में करेंगे! थोड़ा बेटे-बेटियों का पहले कर लें (बाद में करेंगे)। स्वयं को लड़का न हो तो दूसरे का ले! क्या कहते हैं उसको? गोद लेना... गोद लेना...! आहा...हा...! अरे...! बेटी न हो तो, बेटी का बेटा होवे उसे सँभाले!

आहा...हा...! परन्तु उसकी सँभाल लेने में वहीं रुका रहेगा। भगवान आत्मा अन्दर क्या चीज़ है? (यह नहीं खोजता)। आहा...हा...! अरेरे...! अनन्त बार तूने (ये सब) किया, प्रभु!

यहाँ कहते हैं **वह प्रयत्न कर**। एक ही प्रयत्न कर–आत्मस्वभाव शुद्ध चैतन्य है, उसकी ओर का पुरुषार्थ कर! वह पुरुषार्थ से प्राप्त हो ऐसा है। 'क्रमबद्ध' भले ही हो, परन्तु क्रमबद्ध में पुरुषार्थ है। क्रमबद्ध में अकर्तापने का पुरुषार्थ है। अकर्तापना होगा तो ज्ञातापना होगा। अकर्ता निषेध से (नास्ति से) है, ज्ञातापना अस्ति से है। जिस समय जो होनेवाला है (ऐसे क्रमबद्ध का) जहाँ निर्णय करे, तब आत्मा राग का और वर्तमान पर्याय का भी कर्ता नहीं। आहा...हा...! तब वह पर्याय का भी ज्ञाता-दृष्टा हो जायेगा। गज़ब बात है, भाई!

वही यहाँ कहते हैं–अन्दर में वह प्रयत्न कर, बापू! आहा...हा...! **'सिर पर मौत मंडरा रही है'...** आहा...हा...! प्रतिक्षण मौत तो मँडराती है। कब देह छूट जायेगी? इसका पता नहीं।

एक मुमुक्षु बात करता था, 'मलूकचन्द'। वह कैसा? कौन सा गाँव कहा? 'मलकापुर।' 'मलकापुर' में एक 'स्वरूपचन्द' है। लड़का बहुत होशियार है। जिसे यह... मोक्षमार्ग कण्ठस्थ है। वह अविवाहित था तो यह मोक्षमार्ग कण्ठस्थ किया। फिर तो व्यापार दस-दस हजार का कपड़े का बड़ा सब व्यापारी हो गया। वह कहता है मेरी उम्र का अट्ठाईस वर्ष का मेरा मित्र मेरे समीप बैठा था, हम दोनों बातें करते थे, उसे कोई रोग नहीं, कुछ नहीं, बातें करते थे साथ में वह वहाँ फू.... ऐसा हुआ! मैंने वहाँ ऐसा देखा तो–मर गया!! कुछ करते हुए कुछ नहीं। ऐसे फू.... (हुआ), स्थिति पूरी हो गयी! फू.... इतना हुआ वहाँ देह छूट गयी। अभी तो बातचीत करते थे। यह 'स्वरूपचन्द' कहता था 'मलकापुर' का है। 'स्वरूपचन्द' लड़का होशियार है। मोक्षमार्गप्रकाशक बहुत जानता है। कण्ठस्थ जैसा हो गया है उसे। एक-एक लाईन उसकी। वह प्रसंग करे–मोक्षमार्गप्रकाशक में से तब ज्ञात हो जाता है कि इसे मोक्षमार्ग (प्रकाशक) बहुत ही याद है। वह कहता था कि मित्र के साथ ऐसे बैठे थे बात करते हुए ऐसे जहाँ ऐसा जरा फू... हुआ देखा, वहाँ देह छूट गयी। देह छूटने के काल से पहले कोई प्रसंग आयेगा कि अब मैं – मरण आता हूँ, हों...! ऐसा (कहकर) मरण नहीं आयेगा। मरण वहाँ पूछने नहीं आयेगा। आहा...हा...! अकाल में ही ऐसे मृत्यु हो जायेगी। 'अकाल में' शब्द से – तुझे ख्याल में नहीं इस अपेक्षा

से (अकाल है) बाकी तो काल में तो वही काल है। आहा...हा...! उस काल में तू यत्न यदि करेगा... आहा...हा...!

'सिर पर मौत मंडरा रहा है' ऐसा बारम्बार स्मरण में लाकर... है? **ऐसा बारम्बार स्मरण में लाकर...** आहा...हा...! **भी तू पुरुषार्थ चला...** इस मौत को बारम्बार याद करके भी पुरुषार्थ जागृत कर (ऐसा कहते हैं)। **कि जिससे 'अब हम अमर भये, न मरेंगे'...** आहा...हा...! जिसको ऐसे आत्मा का ज्ञान हो... 'अब हम अमर भये, न मरेंगे'–हम मरते नहीं। हम तो अमर हो गये। हमारा आत्मा अमर (है)। हमने अमर को जाना, अमर का अनुभव किया, अमर की प्रतीति की–'अब हम न मरेंगे' यह 'आनन्दघनजी' का वचन है। श्वेताम्बर में एक 'आनन्दघनजी' हो गये हैं। 'अब हम कबहू न मरेंगे!' आहा...हा...!

वही कहते हैं, देखो! **'अब हम अमर भये, न मरेंगे'...** शान्ति के नाथ की यदि अन्दर में रट लगी होगी, अन्तर ज्ञाता-दृष्टा और आनन्द की रट यदि लगी होगी तो 'अब हम अमर भये'–आत्मा अमर है। आत्मा कभी मरता नहीं। आहा...हा...! आत्मा तो अमृत का सागर है। अर्थात्? अमृत अर्थात्? जो किसी से मरता नहीं। अ+मृत– वह किसी को मारता नहीं। किसी के द्वारा वह मारा जाता नहीं, ऐसा वह अमृतसागर है। आहा...हा...! ऐसे आत्मा की जिसे भीतर में रट लगी, लगन लगी, जिसने संस्कार ग्रहण किये, जिसके स्मरण में बारम्बार ज्ञायक हूँ... ज्ञायक हूँ... ज्ञायक हूँ...–ऐसे संस्कार डाले हो, उसे ज्ञायक का भान होने पर... ऐसा कहते हैं, देखो! है? आहा...हा...! **ऐसे भाव में तू समाधिपूर्वक देहत्याग कर सके।** 'अब हम अमर भये, न मरेंगे'–आत्मा अमर–नित्य है, इस नित्य का जहाँ अन्तर (में) ज्ञान और सम्यग्दर्शन हुआ (यह कहते हैं) 'अब हम न मरेंगे।' है? **ऐसे भाव में तू समाधिपूर्वक...** (अर्थात्) शान्ति... शान्ति... शान्ति... (पूर्वक देह त्याग करेगा)।

एक आदमी मर रहा था, देह छूटनेवाली थी, (वह) क्षयोपशमवाला था। (तब) उसे दूसरे सुना रहे थे। (तब उसने कहा) 'भाई! सुनाना छोड़ दे! अब मुझे सुनाना छोड़ दे। मैं तो अपने ध्यान में हूँ!' सुनते समय भी सामने लक्ष जाता (है), (वह) राग है। सुनने भी राग है। इस राग में रहेगा तो भी उसकी मृत्यु सत्य (सम्यक्प्रकार से) नहीं होगी। 'राग से रहित मैं अपने ध्यान में हूँ। मुझे अब कोई सुनाईये मत। मुझे कुछ सुनना नहीं है। (मेरा) यह प्रभु अन्दर है। आहा...! समझ में आया? ऐसे एक आदमी की मृत्यु हुई थी।

यहाँ कहते हैं **(ऐसे भाव में तू) समाधिपूर्वक देहत्याग कर सके। जीवन में एक शुद्ध आत्मा ही उपादेय है।** जीवन में एक शुद्धात्मा ही उपादेय है। देखो! यह सारांश! निमित्त है, वह उपादेय–आदरणीय नहीं है। शुभराग भी आदरणीय नहीं, एक समय की पर्याय भी आदरणीय नहीं है, आहा...हा...! एक त्रिकाली शुद्धात्मा ही अंगीकार करनेयोग्य है। कब बैठे...! है अन्तिम शब्द? **एक शुद्ध आत्मा ही...**

कौन आत्मा? जीवन में एक शुद्ध आत्मा (ही उपादेय है)। अन्दर शुद्धस्वरूप प्रभु (आत्मा विराजमान है)। जैसे डिब्बी में हीरा अलग से पड़ा हो; वैसे राग और शरीर से भिन्न अन्दर भगवान हीरा–चैतन्य हीरा पड़ा है। इसकी दृष्टि और संस्कार जिसने ग्रहण किये, उसे अब मृत्यु का डर नहीं रहा। उसे अब भव करने नहीं रहे। वह आत्मा का शरण करेगा तो; इसके बिना अभी अरिहन्त और सिद्ध का शरण लेने जायेगा तो (वह भी) राग है। आहा...हा...! यह 412 हुआ।

सर्वज्ञभगवान परिपूर्णज्ञानरूप से परिणमित हो गये हैं। वे अपने को पूर्णरूप से–अपने सर्व गुणों के भूत-वर्तमान-भावी पर्यायों के अविभाग प्रतिच्छेदों सहित-प्रत्यक्ष जानते हैं। साथ ही साथ वे स्वक्षेत्र में रहकर, पर के समीप गये बिना, परसन्मुख हुए बिना, निराले रहकर लोकालोक के सर्व पदार्थों को अतीन्द्रियरूप से प्रत्यक्ष जानते हैं। पर को जानने के लिये वे परसन्मुख नहीं होते। परसन्मुख होने से तो ज्ञान दब जाता है–रुक जाता है, विकसित नहीं होता। जो ज्ञान पूर्णरूप से परिणमित हो गया है वह किसी को जाने बिना नहीं रहता। वह ज्ञान स्वचैतन्यक्षेत्र में रहते हुए, तीनों काल के तथा लोकालोक के सर्व स्व–पर ज्ञेय मानों वे ज्ञान में उत्कीर्ण हो गये हों उस प्रकार समस्त स्व–पर को एक समय में सहजरूप से प्रत्यक्ष जानता है; जो बीत गया है उस सबको भी पूरा जानता है, जो आगे होना है उस सबको भी पूरा जानता है। ज्ञानशक्ति अद्भुत है॥413॥

413। **सर्वज्ञभगवान परिपूर्णज्ञानरूप से परिणमित हो गये हैं।** तीन लोक के नाथ, यही आत्मा सर्वज्ञरूप हुए (हैं)। आ...हा...हा...! हो चुके, उनकी यह बात है। **वे अपने को पूर्णरूप से–अपने सर्व गुणों के...** अपने सर्व गुणों के! **भूत-वर्तमान-भावी पर्यायों के अविभागप्रतिच्छेदोंसहित...** यह क्या कहा? प्रभु का स्वभाव तो सर्वज्ञ है। सैंतालीस शक्ति में लिया है। 47 शक्ति हैं न? इस (आत्मा में) सर्वज्ञ शक्ति है। आत्मा सर्वज्ञस्वभावी ही है–ऐसा जिसको भान हुआ और उसी में जिसकी रट लगी, वे सर्वज्ञ हुए। ऐसे अनन्त सर्वज्ञ हो गये।

यह सर्वज्ञ अपने अनन्त गुणों को, अनन्त पर्यायों को और एक–एक पर्याय के अनन्त अविभागप्रतिच्छेदों को (जानते हैं)। (अविभाग प्रतिच्छेद कहा) यह क्या? एक समय के ज्ञान में तीन काल, तीन लोक जानने में आयें, तो एक पर्याय के कितने भाग हुए?! एक केवलज्ञान की पर्याय में तीन काल, तीन लोक जानने में आते हैं। एक पर्याय में इतनी ताकत (है)!! इसके इतने भाग करो तो अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद (होते हैं)।

अ–विभाग अर्थात् भाग न कर सके–ऐसे प्रतिच्छेद अर्थात् अंश। केवलज्ञान की एक समय की एक पर्याय में अनन्त प्रतिच्छेद हैं। ऐसे–ऐसे अनन्त गुणों की अनन्त पर्यायों में, एक–एक पर्याय में अनन्त प्रतिच्छेद हैं। उसे भी भगवान एक समय में जानते हैं। आहा...हा...! ऐसा ताकतवाला तू है, ऐसा बताते हैं! अरे...! परन्तु कैसे बैठे कैसे? आहा...!

यह जगत की जाल... सारा दिन जाल में–पाप (में) अटका। धर्म तो नहीं है परन्तु पुण्य का भी ठिकाना नहीं है! (एकाध) घण्टा पूजा-भक्ति आदि शुभभाव कर ले (फिर) सारा दिन पाप में...! हो गया...! वह पुण्य (भी) धुल जाता है, (वह) पुण्य जल जाता है! आ...हा...हा...! और उस पाप की अधिकता हो जाती है। उस पाप की अधिकता में मरकर फिर जाये हलकी गति में!

यहाँ कहते हैं (जो) सर्वज्ञ हुए (वे) **अपने सर्व गुणों के भूत-वर्तमान-भावी पर्यायों के अविभागप्रतिच्छेदोंसहित-प्रत्यक्ष जानते हैं।** केवलज्ञानी तीन काल, तीन लोक को जानते हैं। 'जो-जो देखी वीतरागने, सो-सो होसी वीरा' आहा...हा...! भगवान के ज्ञान में जो आया है, उस समय वह पर्याय अवश्य होगी ही। ऐसी पर्यायों का ज्ञान सर्वज्ञ को

एक समय में आ गया है। ऐसे सर्वज्ञ दूसरों की पर्याय के कर्ता नहीं हैं; ज्ञायक हैं–कर्ता नहीं। भगवान ने जाना; इसलिए पर में पर्याय हुई–ऐसा नहीं है और पर में पर्याय हुई, इसलिए (सर्वज्ञ को) जानने का–ऐसा भी नहीं है। आहा...हा...हा...!

स्व की जानने की पर्याय में इतनी ताकत है कि स्व के अनन्त (अविभाग) प्रतिच्छेद, अनन्त गुण और द्रव्य–(सबको) एक ही समय में अपने ज्ञानसामर्थ्य द्वारा जानते हैं, उन्हें सर्वज्ञ परमात्मा कहते हैं। आहा...! ऐसे सर्वज्ञ परमात्मा की जिसको प्रतीति हो, उसे सम्यग्दर्शन हुए बिना रहता नहीं। क्योंकि सर्वज्ञस्वभाव आत्मा का ही है! आहा...हा...! ऐसा कठिन है। यह स्वयं ही सर्वज्ञस्वरूपी है।

('समयसार'–47 शक्ति में) सर्वज्ञस्वभाव में ऐसा कहा है कि 'सर्व' शब्द भले ही हमने लगाया, परन्तु है 'आत्मज्ञ'। केवली तीन काल, तीन लोक को जानते (हैं) ऐसा हमने कहा, सो तो एक उपचार से कहा है। वरना वे हैं–'आत्मज्ञ'! आत्मा की पर्याय को जाननेवाले, उसमें लोकालोक तो सहज ज्ञात हो गया है। उनकी नज़र लोक पर नहीं है। ऐसी सर्वज्ञ शक्ति प्रत्येक आत्मा में बिराजमान है। इस शक्ति की सँभाल करे तो सम्यग्दर्शन और सर्वज्ञ हुए बिना रहे नहीं।

विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)